संगठित घृणा का संगठित प्रतिकार

महाराष्ट्र में सांप्रदायिक अशांति, नई संसद के उद्घाटन पर धार्मिकता का प्रदर्शन और 'द केरल स्टोरी', ये सभी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ - भारतीय जनता पार्टी के बड़े सांस्कृतिक युद्ध का स्वाभाविक हिस्सा हैं।

जन चेतना को बिगाड़ने वाले ऐसे मुद्दे आमतौर पर हिंदुओं को मुसलमानों के खिलाफ, कुलीन स्थापनावादियों को जमीन से जुड़े राष्ट्रवादियों के खिलाफ और संवैधानिक मूल्यों को पारंपरिक मूल्यों के खिलाफ करते हैं। इस युद्ध का भारत के सामाजिक ताने-बाने पर गहरा प्रभाव पड़ने के बावजूद इस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है कि ऐसी बेकार की प्रवृत्तियाँ सामाजिक आधार क्यों प्राप्त करती हैं। यदि अधिकांश भारतीय गंगा-जमुनी तहजीब के अनुसार रहते हैं, तो कोई भी चीज उन्हें सांप्रदायिक, जातिवादी, पितृसत्तात्मक या नस्लवादी नहीं बना सकती है। फिर भी, अध्ययनों से पता चलता है कि भारत कट्टरपंथी और सामाजिक रूप से रूढ़िवादी हो गया है। इससे ऊपर उठने के लिए हमें सबसे पहले फैलाई जा रही नफरत या घृणा के तानेबाने को समझना होगा।

आज मोटे तौर पर तीन तरह की घृणा फैलाई जा रही हैं - संगठित, विरासत से प्राप्त और समाहित घृणा। पहली प्रकार की घृणा आरएसएस-बीजेपी जैसे संगठनों द्वारा प्रायोजित की जा रही है। विरासत में मिली घृणा पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है। यह संगठित घृणा फैलाने वालों के लिए उपजाऊ मिट्टी का काम करती है। अंत में, समाहित घृणा आती है, जो अधिकांश मूक जनता में एक बीमारी की तरह फैल रही है। संघ परिवार, अपने मतदान आदि से जुड़े अल्पकालिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए इस घृणा को बढ़ावा देता है।

दुर्भाग्य से, आज घृणा का प्रतिकार करने के लिए कोई संगठित संघ नहीं है। प्रगतिशील पार्टियाँ इससे बचती हैं। ऐसा होने का एक कारण यह भी है कि इसके जवाब में संघ परिवार आसानी से ऐसी कोई कार्रवाई कर सकता है, जो बीजेपी को चुनावी लाभ पहुंचाए। अधिकांश पार्टियाँ वैचारिक मुद्दों पर न तो कार्यक्रम बनाती हैं, और न ही उन्हें क्रियान्वित करती हैं।

संरचनात्मक रूप से घृणा का मुकाबला -

भारत में व्याप्त घृणा के सामने पूरा समुदाय सिकुड गया है। इसे देखते हुए, नैतिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण पर विचार किया जाना चाहिए, जो घृणा से जन्में प्रतिगामी विचारों का मुकाबला कर सके।

1. प्रगतिवादियों को मौजूद सामाजिक आशंकाओं को स्वीकार करना होगा, जो आर्थिक और राजनीतिक अवसरों को गंवाने के डर से जुड़ी हैं। उनका समाधान ढूंढना होगा। उदाहरण के लिए, बेरोजगारी एक बड़ी समस्या है। लेकिन बीजेपी उसकी जिम्मेदारी मुस्लिमों की बढ़ती आबादी पर थोप देती है। इसके पीछे के मूल कारण का जिक्र नहीं होता कि सार्वजनिक क्षेत्र की सम्पत्तियों को तेजी से क्यों बेचा जा रहा है या शिक्षा को सुगम बनाने वाली नीतियां कहाँ हैं।

2. प्रगतिवादियों को नागरिक समाज या सिविल सोसायटी के साथ सहयोग करना चाहिए। इनके साथ मिलकर एक ऐसा वैकल्पिक एजेंडा लाया जाना चाहिए, जो भारत को उत्साहित कर सके। तभी मूक बहुमत के अंदर पैठ रही घृणा को धीरे-धीरे कम किया जा सकता है।

3. प्रगतिशील पार्टियां जब सत्ता में जगह बना सकें, तो प्रतिगामी गतिविधियों को रोकने का प्रयत्न कर सकती हैं, जैसा कि कर्नाटक सरकार कर रही है।

4. प्रगतिवादियों को प्रतिगामी घटनाओं के हितैतिषों पर भी नजर रखनी होगी। कभी-कभी संकीर्ण आर्थिक हितों को बढ़ावा देने के लिए कोई आड़ लेकर काम किया जाता है। जैसे, बूचड़खानों पर किया गया हमला वैचारिक रूप से प्रेरित था। लेकिन आर्थिक प्रतिस्पर्धियों द्वारा भी समर्थित था।

   भारत वैचारिक लचीलेपन या सिद्धांतहीन राजनीति के लिए नहीं बना है। इस संदर्भ में, प्रधानमंत्री नेहरू की सांप्रदायिकता के खिलाफ उत्साही लड़ाई को याद किया जाना चाहिए। 1951-52 के आम चुनाव में उन्होंने अनेक माध्यमों से इसके विरोध में अभियान चलाया था। आज भारत को पहले से भी अधिक तेजी से ऐसे प्रतिकार की जरूरत है। क्या हम राष्ट्रहित में संकीर्ण हितों से ऊपर उठकर काम नहीं कर सकते हैं?

'द हिंदू' में प्रकाशित पुष्पराज देशपांडे के लेख पर आधारित। 23 जून, 2023